Chapter-2

द्वितीय अध्याय

प्रसाद और न्हानालाल की जीवनी और व्यक्तित्व

ooo

१ प्रसाद जीवनी और व्यक्तित्व

२ न्हानालाल जीवनी और व्यक्तित्व

३ तुलना – निष्कर्ष

ooo

प्राक्कथन :

यह परिवर्तनशील विश्व अनेक उपकरणों का समूह है। उसमें मानव सर्वश्रेष्ठ बौद्धिक प्राणी है। परिस्थिति प्रकृति एवं रुचि के अनुसार उनके अनेक जीवन रूप दिखायी पड़ते हैं। कई अंधकार से प्रकाश के प्रति जानेवाले कई प्रकाश से, प्रकाश की ओर जाने वाले और कुछ प्रकाश से अंधकार की ओर जानेवाले होते हैं। कवि प्रसाद द्वितीय श्रेणी के मानव थे अर्थात् प्रकाश की ओर जाने वाले।

अध्ययन की आधारभूत सामग्री :

कवि प्रसाद जी का जीवनवृत्त लिखने में कवि की प्रकाशित सभी प्रमुख काव्य कृतियों एवं उन पर किये गये महत्त्वपूर्ण प्रमुख शोधग्रन्थों से यथावश्यक सामग्री ग्रहण की गई है। कवि की जिन प्रमुख काव्यकृतियों से सामग्री संकलन करने में सहायता प्राप्त हुई है उनमें - झरना, आँसू, लहर और कामायनी प्रमुख हैं। जिन शोध ग्रन्थों से एतद्विषयक सामग्री उपलब्ध होती है, वे मुख्यतः निम्नलिखित हैं —

(१) महा कवि प्रसाद - विजयेन्द्र स्नातक, डा० खंडेलवाल
(२) प्रसाद का काव्य - डा० प्रेम शंकर
(३) प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन - डा० वीणा माथुर
(४) प्रसाद : समीक्षात्मक ग्रन्थ - निर्मल तालवार
(५) कामायनी में काव्य, संस्कृति - डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना
और दर्शन
(६) कामायनी के अध्ययन की समस्याएं - डा० नगेन्द्र
(७) युग कवि प्रसाद - डा० गणेश खरे
(८) कवि प्रसाद की काव्य साधना - श्री रामनाथ सुमन

(९) जयशंकर प्रसाद – वस्तु और कला – डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल

(१०) जयशंकर प्रसाद – आचार्य नंददुलारे बाजपेयी

(११) कवि प्रसाद – डा० भोलानाथ तिवारी

(१२) प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन – डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह

जीवनवृत्त, जाति और वंश परिचय :

कवि प्रसाद का जन्म काशी में गोवर्धन सराय मुहल्ले में " सुंघनी साहु " नाम से प्रतिष्ठित और वैभवशाली परिवार में माघ शुक्ल दशमी दिनांक ३० जनवरी १८९० को हुआ था । उनके पिता का नाम देवी प्रसाद और माता का नाम श्रीमती मुन्नादेवी था । [१] उनके पितामह शिवरत्न साहु की काशी में तूती बोलती थी, और पिता श्री देवीप्रसाद जी के समय उनके घर पर पंडितों, गवैयों, वैद्यों, यांत्रिकों, ज्योतिषियों तथा पहलवानों आदि का सदैव मेला-सा लगा रहता था । अनेक परदेशी व्यापारी और तान्त्रिक लोग भी आते थे । इन सब का यथोचित सत्कार किया जाता था और पर्याप्त धन भी व्यय होता था । यहाँ से सभी संतुष्ट होकर लौटते थे । इतने विशाल हृदयवाली परम्परा सद्भाग्य से प्रसाद को प्राप्त थी । मानव-जीवन दो तत्त्वों पर अवलंबित रहता है : (१) पारिवारिक संस्कार (२) वातावरण । प्रसाद जी के व्यक्तित्व के निर्माण में ये दोनों तत्त्व कार्य शील रहे । यही उनकी दिव्यता के आधार थे । सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से " सुंघनी-साहु " परिवार का नाम काशीराज नरेश के पश्चात् लिया जाता था । प्रसाद जी ने अपने कुल की प्रतिष्ठा आजीवन निभाई । ऐसे संपन्न और यशस्वी परिवार में जन्म लेने के कारण उनमें उदारता, गंभीरता, शालीनता और मानवता के उच्च गुणों का प्रादुर्भाव था । इन उच्च

१ विस्तृत विवरण के लिए परवर्ती पृष्ठ पर अंकित वंशवृक्ष देखिए ।

गुणों का प्रभाव यत्र-तत्र उनके काव्यों में परिलक्षित होता है ।

प्रसाद वंश वृक्ष

- जगन्‍ साहु
  - गुरु सहाय साहु
    - गोवर्द्धन साहु
      - रामप्रसाद
      - गंगू साहु (निःसंतान)
  - गनपत साहु
    - शिवरत्न साहु
      - शीतलप्रसाद (निःसंतान)
      - देवीप्रसाद पत्नी मुन्नादेवी
        - शंभुरत्न
        - जयशंकर प्रसाद तीसरी पत्नी श्रीमती कमलादेवी
          - रत्न शंकर
        - देवकी
        - सेवकी
        - प्यारी
      - बैजनाथ प्रसाद (निःसंतान)
      - गिरिजा शंकर
        - भोलानाथ
        - अमरनाथ
      - बितूसाह
        - शिव शंकर
      - गौरी शंकर (निःसंतान)

विशेष - सं० १८२० में गनपत साहु तथा गोवर्द्धन साहु ने मिल कर एक फर्म की स्थापना की जिसका नाम " गनपतसाव-गोवर्धनसाव " रखा गया । गनपत साहु के बडे भाई गुरु सहाय की मृत्यु हो जाने पर दोनों चाचा भतीजे - गनपत साहु और गोवर्द्धन साहु अलग हो गये और फर्म का भी बंटवारा हो गया ।

" सुंघनी साहु " परिवार का आदर्श :

" सुंघनी साहु " परिवार प्रारंभ से ही शिवोपासक था । कहा जाता है कि उनके माता पिता का यह विश्वास था कि शिव प्रताप और शिव-भक्ति के कारण ही प्रसाद जी का जन्म हुआ । सम्भवतः इसी कारण उन्हें वैद्यनाथ-धाम के झारखंड के आधार पर " झारखण्डी " भी कहा जाता था । बाद में उनका नामकरण " जयशंकर " हुआ । " प्रसाद " उनका उपनाम रहा है जो आगे चलकर प्रचलन के कारण मूलनाम से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बन गया । प्रसाद की माता मुन्नादेवी अति भावुक और शिवभक्त थी । यही कारण है कि प्रसाद में प्रारंभ से ही भारतीय संस्कृति के अनुरूप भक्ति और श्रद्धा के गुणों का सन्निवेश रहा । इस तरह शिव-भक्ति और शिव दर्शन की ओर आकृष्ट होने के मूल प्रेरणास्रोत उनकी वंश परंपरागत देन थी । जीवन के अंति दिनों तक वे शिव चरणोदक और पूजा के बेल-पत्र आदि को अपने नेत्रों से लगा कर भक्ति की भावनाएं व्यक्त करते थे ।

बाल्य काल :

जैसा कि आरम्भ में भी दृष्टिगत किया जा चुका कि सुखी और साधन संपन्न कुल में प्रसाद का जन्म हुआ था । उनके माता पिता बड़े संस्कारी और धार्मिक थे । अतः उनको बारह साल तक माता पिता का अपूर्व स्नेह मिला । इसके बाद प्रसाद का दुःखमय और संघर्षयुक्त जीवन प्रारंभ हुआ । बारह वर्ष की अवस्था में उनके पिता देवी प्रसाद का निधन हुआ और १५ वर्ष की उम्र में उनकी ममतामयी माता श्रीमती मुन्नादेवी का स्वर्गवास हुआ । इस प्रकार किशोरावस्था तक आते आते प्रसाद निराश्रित-से बन गये । इस समय इनके अग्रज शंभुरत्न ही प्रसाद के लिये पितृ समान थे । वे उनकी खूब सावधानी रखते थे । लेकिन दुर्भाग्य कभी अकेला नहीं आता । कालान्तर में इस सुख से भी प्रसाद वंचित रहे, क्योंकि माता के निधन के दो वर्ष बाद अर्थात् सत्रह साल की अवस्था में उनके

अग्रज शंभुरत्न जी भी स्वर्गवासी हुए । अब प्रसाद पर अनेक प्रकार की कठिनाइयां आ पड़ीं । किसी की भी छत्रछाया नहीं, बिल्कुल निराधार और सूने से रह गये । अग्रज के निधन के बाद उन्हें आर्थिक संघर्ष का भी सामना करना पड़ा । ये संकट इस प्रकार के थे –

१ माता, पिता और अग्रज का लाखों का ऋण ।

२ तंबाकू का गिरता हुआ व्यापार ।

३ बटवारे को लेकर भयंकर गृह-कलह तथा मुकदमाबाजी

अग्रज शंभुरत्न जी के देहावसान होने पर गृहस्थी का पूरा उत्तरदायित्व प्रसाद जी के कन्धों पर आ पड़ा । उन्होंने अपूर्व साहस और आशा के साथ अपना जीवन स्रोत अनेक प्रकार की कठिनाइयों से प्रवाहित कर गतिशील और दृढ़ बनाया । २४-२५ साल की आयु में अथाह श्रम से अपना सारा ऋण भी उतार दिया ।

सत्रह वर्ष की आयु, वैभव और प्रतिष्ठा की महान परम्परा, लम्बी गृहस्थी, घर में न पिता न मां, न बड़ा भाई – एक मात्र अकेला पुरुष । आपदाओं का पहाड़ टूट पड़ा अकेले प्रसाद जी पर अप्रत्याशित रूप से । घर में विधवा भाभी थीं, सब का बोझ विधाता ने उनके सिर पर ला पटका । ऐसी ही दुर्दमनीय विपन्न स्थिति में कुटुम्बियों, परिवार के शुभेच्छुओं एवं सम्बन्धियों का सम्पत्ति पर अधिकार करने के लिए षड्यंत्र भी चला । सत्रह वर्ष के एक युवक के सिर पर ऐसी महान विपदाएं एक साथ आ पड़ें और वह उन्हें सह ले, यह साधारण व्यक्तित्व का कार्य नहीं ।[१] उन्होंने कठिनाइयों सब को देखा, समझा, पर उनसे उन्होंने समझौता नहीं किया । जीवन और मरण जैसे प्रश्नों के रहते हुए भी वे अपने पथ पर बढ़ते रहे और बाधाओं से संघर्ष करते रहे ।[२]

---

१ सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० ४५-४६

२ वही, पृ० ४६

शिक्षा-दीक्षा और ज्ञानार्जन :

बचपन में प्रसाद जी को सब से पहले गोवर्द्धन सहाय मुहल्ले में श्री मोहिनीलाल गुप्त जी अपनी निजी पाठशाला में पढ़ने के लिए भेजा गया । वहां पर प्रसाद ने अक्षर ज्ञान प्राप्त किया और साथ ही कविताएं लिखने की प्रेरणा भी प्राप्त की, क्योंकि मोहिनीलाल गुप्त स्वयं एक रससिद्ध कवि थे । इस छोटी-सी पाठशाला को प्रसाद " आरम्भिक-सरस्वती-पीठ " कहा करते थे ।[1] इसके बाद उन्होंने क्वींस कालेज में सातवीं कक्षा तक शिक्षा ग्रहण की, परंतु पिताजी की मृत्यु हो जाने के कारण अधिक न पढ़ सके और घर पर ही संस्कृत, उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाएं सीखने लगे । श्री दीनबन्धु ब्रह्मचारी से उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया और उपनिषद् ग्रन्थ पढ़े ।[2] इसके अतिरिक्त अन्य वैदिक ग्रन्थों, वैष्णव और शैव दर्शनों का स्वयं अध्ययन करके इनका पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया, जिसकी छाप इनकी रचनाओं में दिखाई पड़ती है । प्रसाद जी प्रारंभ से ही पढ़ने में अति कुशल थे । ५ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने " लघु-कौमुदी " तथा " अमरकोश " कंठस्थ कर लिये थे । स्वाध्याय की ओर भी उनकी प्रवृत्ति आरंभ काल से ही रही । स्वाध्याय के द्वारा ही आपने भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन, साहित्य शास्त्र, सौन्दर्य शास्त्र, ज्योतिष, प्राचीन भारतीय इतिहास, वेद और संत साहित्य में गहरा ज्ञान प्राप्त कर लिया था । उनका बहुमुखी गंभीर अध्ययन था ।

वे अपने वार्तालाप में समय समय पर संस्कृत, उर्दू, फारसी, हिन्दी आदि के समुचित उद्धरण देते रहते थे । संस्कृत में कालिदास, हिन्दी

[illegible]

१ रायकृष्णदास - प्रसाद की याद- संस्मरण-१ दीपावली अंक पृ० ७

२ विनोद शंकर व्यास - प्रसाद और उनका साहित्य, पृ० १५-२०

में सूर, तुलसी और भारतेन्दु, फारसी में उमर खय्याम, जलालुद्दीन रूमी और हाफिज तथा उर्दू में मीर, जौक और गालिब की रचनाएं उन्हें विशेष पसंद थीं। इन कवियों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रसाद के काव्यों पर गहरा प्रभाव पड़ा। " तुलसी " और भारतेन्दु की प्रशस्ति में तो आपने अनेक रचनाएं भी की है। प्रसाद जी की अंग्रेजी भाषा और साहित्य में भी गहरी पैठ थी। उनकी " विराम चिह्न " शीर्षक कहानी अंग्रेजी में अनूदित की गई। उनके निजी पुस्तकालय में अंग्रेजी की ये पुस्तकें थीं :-

" अरेबियन नाइट्स, डान जान, पोप, शेक्सपियर, इंडियन ऐन्टीक्वेरी, फ्राम डान टु डस्क, हिस्ट्री आफ रोम, हिस्ट्री आफ ग्रीस, हिन्दू सोसियोलाजी, चेम्बर्स डिक्शनरी।" इनसे उनकी अंग्रेजी साहित्य प्रियता और अध्ययन का व्यापक दृष्टिकोण सूचित होता है।

नौ वर्ष की उम्र में ही प्रसाद जी ने समस्यापूर्ति करना प्रारंभ कर दिया था और एक समस्यापूर्ति करते हुए निम्न लिखित कविता लिख कर अपने बचपन के गुरु " रस सिद्धा " श्री मोहिनीलाल गुप्त को सुनाई थी -

" हारे सुरेस, रमेस, धनेस, गनेस, हू सेस न पावत पारे,
पारे है कोटिक पातकी पुंज " कलाधर " ताहि छिनो लिखी तारे
तारेन की गिनती सम नाहिं, सुजेते तरे प्रभु पापी विचारे,
चारे चले न विरंचि हू के जो दयालु ह्वै शंकर नैकु निहारे " [1]

इसे सुनकर गुरुजी प्रसन्न और चकित हो गये और प्रसाद जी को महा कवि बनने का आशीर्वाद दिया।

<u>यात्राएं और प्रकृति प्रेम :</u>

प्रसाद जी ने पांच वर्ष की अवस्था में अपनी मां मुन्नादेवी के साथ

---

1 ले० डा० राजेन्द्र नारायण शर्मा, साप्ताहिक आज प्रसाद जी के संस्मरण

कुछ संस्कारों के लिए जौनपुर और विन्ध्याचल की सुरम्य घाटियों की पहली यात्रा की थी। वहां के प्राकृतिक सौंदर्य की उनके मन पर बडी गहरी छाप पडी। बचपन से ही वे प्रकृति प्रेमी बन गये। ये दृश्य उनकी आंखों में सदा झूलते रहे। अपनी नौ वर्ष की अवस्था में तो प्रसाद जी ने अपनी मां के साथ चित्रकूट, नैमिषारण्य, मथुरा, ओंकारेश्वर, धाराक्षेत्र, उज्जैन, पुष्कर, ब्रज, अयोध्या, आदि धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक स्थलों की लम्बी यात्रा की। इन यात्राओं के अंतर्गत उन्हें अनेक पंडितों की मित्रता का भी लाभ हुआ। उनके मन में माता की श्रद्धा, भक्ति और भारत की दिव्य संस्कृति ने बडा गहरा प्रभाव डाला जो आजीवन बना रहा। प्रसाद जी ने अपने निधन के पांच वर्ष पूर्व गया, महोदधि, भुवनेश्वर, पुरी की लम्बी यात्राएं कीं। पुरी के समुद्र तट पर ही उन्होंने ये दो कविताएं लिखी :

(१) " ले चल मुझे भुलावा दे कर मेरे नाविक धीरे धीरे "

(२) " हे सागर संगम अरुण नील " [१]

इसके बाद प्रसाद जी ने अपने पुत्र रत्नशंकर के अत्यधिक अनुरोध पर प्रदर्शिनी देखने के लिये लखनऊ की यात्रा की। यही आप की अंतिम यात्रा थी। बीच-बीच में आप दो बार प्रयाग भी गये। शेष आप का सारा जीवन बाबा विश्वनाथ की छाया में काशी में बीता। इन विभिन्न यात्राओं से उनके मन में प्रकृति प्रेम की अमिट छाप पडी। यही प्रकृति प्रेम उनके जीवन का एक अभिन्न अंग रहा है, जो कि उनकी कृतियों में भी प्रतिबिम्बित है।

जीवन की प्रमुख घटनाएं :

पूर्ववर्ती विवरण से प्रकट है कि प्रसाद जी का जीवन ग्यारह वर्ष तक सुखपूर्ण और बड़े वैभव और विलास में बीता। जीवन सदैव समतल नहीं रहता। अनेक प्रकार की घटनाएं और परिस्थितियां आ घेरती है। बारह वर्ष की आयु में प्रसाद जी के पिता देवीप्रसाद जी का निधन, १५ वर्ष की अवस्था में

१ जयशंकर प्रसाद, लहर, पृ० १४-१५

माताजी मुन्नादेवी का स्वर्गवास और १७ वर्ष की अवस्था में बड़े भाई शंभुरत्न जी का निधन हुआ। वे ही घर तथा दुकान की देखभाल करते थे। वैसे वे बड़े ही शौकीन और रईसी ठाट के व्यक्ति थे, जिनके अपव्यय के कारण ही प्रसाद-परिवार पर्याप्त ऋण हो गया था। उन्हें दुःखद गृहस्थी का भार संभालना पड़ा और सत्रह वर्ष की अवस्था में ही व्यापार, गृहस्थी तथा अपने उत्तरदायित्व का भार प्रसाद जी के कंधों पर आ गया।[1] बुद्धि, चतुराई, व्यवहार-दक्षता एवं कर्मठता से उन्होंने अपना व्यापार-संभाला और लगातार २४-२५ वर्षों के अथक श्रम एवं अध्यवसाय से सारा ऋण भी अदा कर दिया।

बड़े भाई की मृत्यु के एक वर्ष बाद ही प्रसाद जी ने स्वयं अपने वैवाहिक संबंध की बातें की और आयु के बीसवें वर्ष में (सन् १९०९ में) गोरखपुर से अपना पहला विवाह किया। प्रथम पत्नी १० वर्ष तक जीवित रही। उनकी मृत्यु के एक वर्ष बाद आपने दूसरा विवाह किया। दूसरी पत्नी से एक वर्ष बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो प्रसूत काल में ही अपनी माता के साथ ही स्वर्ग सिधार गया। इससे उन्हें तीव्र पीड़ा हुई और वे गार्हस्थ्य जीवन के सुख से उदासीन हो गये, किन्तु आखिर वे माँ-तुल्य भाभी के अनुरोध को नहीं टाल सके और उन्हों ने अपना तीसरा विवाह भी किया।[2] उनका व्यक्तित्व इतना विशाल था कि अपने परिचय के संबंध में " हंस " के आत्म कथांक में प्रेमचन्द जी के विशेष आग्रह पर उन्होंने एक रचना दी वह " लहर " काव्य में तीसरा गीत है। उनकी तृतीय पत्नी श्रीमती कमलादेवी और वृद्धा भाभी तथा पुत्र रत्न शंकर अभी जीवित हैं।

---

१ प्रसाद का जीवन और साहित्य, पृ० १४

२ मधुप गुन गुनाकर कहता - - - - - लहर गीत २
यह प्रगीत प्रसाद जी की प्रच्छन्न मनोव्यथा व्यक्त करता है। " झरना " काव्य ग्रन्थ की " परिचय " एवं " समर्पण " नामक कविताएं भी इसी संबंध की हैं।

महायात्रा :

सं० १९९३ (सन् १९३६) में उन्हें ज्वर आया। लोग मलेरिया बतलाते रहे। वे लखनऊ प्रदर्शिनी देखने गये थे। वहाँ से लौट कर आने के कुछ दिनों बाद वे पुनः ज्वर से पीडित हुए। अब की बार उनके कफ आदि की जाँच हुई, जिससे पता चला कि वे राजयक्ष्मा रोग से पीडित थे। सं० १९९४ (सन् १९३७) में फिर से ज्वरग्रस्त हुए, जीभ पर छाले पड गये और भयंकर दशा हो गई। अंत में सन् १९३७ में वे चर्म रोग से भी ग्रसित हुए और बीमारी पर्याप्त बढ चुकी थी। अंत में कार्तिक शुक्ल एकादशी सं० १९९४ ति० (१५, नवम्बर, १९३७ ई०) को संध्या के साढे चार बजे हिन्दी भाषा के इस अमर कवि ने अपने पार्थिव शरीर को छोड दिया। रात्रि के आठ बजे प्रसाद जी की शव यात्रा निकली। पूर्वजों की प्रथानुसार काशी के हरिश्चंद्र घाट पर उनका अग्नि संस्कार किया गया। अग्नि देव ने पार्थिक शरीर को पंचतत्त्वों में विलीन कर दिया। इस तरह लगभग ४८ वर्ष की आयु में ही हिन्दी का यह अमर कवि हिन्दी जगत् से विदा हो गया।

उनके निधन पर श्रद्धांजलि रूप में गुप्त जी तथा निराला जैसे महा कवियों ने जो कुछ लिखा है, वस्तुतः वह उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के सर्वथा अनुकूल है।

गुप्तजी की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :-

" जयशंकर " कहते कहते ही अब भी काशी आवेंगे।
किन्तु " प्रसाद " न विश्वनाथ का मूर्तिमान हम पायेंगे।
तात भस्म भी तेरे तनु की हिन्दी की विभूति होगी
पर हम जो हंसते आये थे, रोते रोते जावेंगे।[१]

१ डा० गणेश खरे, युग कवि प्रसाद, पृ० ३३

निराला जी ने उनके प्रति एक प्रशस्ति रचना ही लिखी है। उसमें कवि की ये दो पंक्तियां इस प्रकार हैं :-

" किया मूक को मुखर, लिया कुछ, दिया अधिकतर,
पिया गरल पर किया जाति, साहित्य को अमर "

व्यक्तित्व :

संक्षेप में यदि कहा जाय तो प्रसाद जी का अपार्थिव व्यक्तित्व उपर्युक्त पंक्तियों में भलीभांति संयोजित है। प्रसाद जी की आकृति बड़ी भव्य और गंभीर थी। उनका कद छोटा लेकिन शरीर बड़ा कसा हुआ हृष्टपुष्ट तथा सुगठित था। उन्हें कसरत और कुश्ती का बड़ा शौक था। वे प्रतिदिन ५०० दंड और १००० बैठक लगाते थे। वे उज्ज्वल और गौर-वर्ण के थे और उनका मुख बड़ा तेजस्वी था। बाल्यावस्था में वे शेरवानी और पाजामा पहन कर निकलते थे।

शारीरिक सौन्दर्य :

युवावस्था में वे कभी कभी पीताम्बर पहनते, उसीके जोड़ का दुपट्टा ओढ़ते तथा गले में पुष्पमाला और मस्तक पर भस्म लगाते थे। वे पहले धोती और मलमल का कुरता पहनते थे। जाड़ों में सुंघनी रंग का मदृठ का कुरता तथा ओवर कोट पहनते थे। आंखों पर चश्मा और हाथ में डंडा रहता था।[1] वे अंत में सादा जीवन व्यतीत करने लगे थे।

स्वभाव :

प्रसाद जी अत्यंत सौम्य और गंभीर स्वभाव के व्यक्ति थे। वे नम्र, निराभिमानी और षड्यंत्रों से दूर रहने वाले उदार व्यक्ति थे। उन्हें कभी किसी पर क्रोध नहीं आता था, किन्तु यदि कोई उनकी धार्मिक भावना को ठेस पहुंचाये तो वे बड़ा क्रोध करते थे। वे सभी से बड़े हंस कर मिला करते थे।

१ प्रसाद, और उनका साहित्य, पृ० ३५

मित्रों से खूब हँसी-मजाक करते, उन्हें छेड़ते और उनकी बातों से बड़े आनंदित होते थे। मित्रों को चिढ़ा कर उनकी जली-कटी बातों से उन्हें बड़ा आनंद आता था। प्रसाद जी को चाटुकारिता से बड़ी घृणा थी, वे अपने कटु आलोचकों की भी आलोचनाएं सहन करते थे। उनका उत्तर देना अच्छा नहीं समझते थे। वे प्रत्येक से सज्जनोचित व्यवहार करते थे। वे अत्यंत संकोची स्वभाव के व्यक्ति थे। वे कभी किसी को धन दे कर नहीं मांगते थे और घर पर कैसा भी व्यक्ति क्यों न आ जाय, उससे वे अच्छी तरह मिलते थे। उसका अपमान करके उसे दुःखी करना उनके स्वभाव में न था। कई मामलों में वे मौन रहते थे, लेकिन बड़े मृदुभाषी, हंसमुख, मिलनसार, सहृदय और व्यवहार कुशल व्यक्ति थे।[1] वे सदैव प्रसन्नचित्त रह कर ईर्ष्या, द्वेष, दंभ, अहंकार आदि से दूर रहते थे। अतः निष्कर्षतः वे एक सरल और सज्जनोचित मनस्वी स्वभाव के व्यक्ति थे।

प्रसाद जी की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी थी। प्रायः वे किसी के घर जाना पसंद नहीं करते थे। वैसे तो अधिकांश व्यक्ति उनके यहां ही आते रहते थे। उन्हें दूसरे के पास जाते हुए हिचकिचाहट होती थी। उनके परम आत्मीय रायकृष्णदास, विनोद शंकर व्यास तथा केदारनाथ पाठक थे। वे उनके यहां निस्संकोच-भाव से आया-जाया करते थे। दूसरे स्थानों पर जाने से उन्हें बहुत संकोच होता था। वे कभी किसी कवि-सम्मेलन अथवा सभा का सभापति होना भी स्वीकार नहीं करते थे। कवि-सम्मेलनों में कविता सुनाना उन्हें पसंद नहीं था। बहुत आग्रह करने पर बड़ी कठिनाई के साथ अपनी लिखी पुस्तक से ही बैठे-बैठे कुछ पढ़ दिया करते थे। जीवन में पहली बार प्रसाद जी ने जनता की भीड़ के सामने कौमुदी महोत्सव के अवसर पर नागरी प्रचारिणी सभा के अहाते में " नारी और लज्जा " नामक कविता पढ़ी थी।[2]

ꝏꝏꝏꝏꝏꝏꝏꝏꝏꝏꝏꝏꝏꝏꝏ

१ प्रसाद और उनका साहित्य, पृ० २५

२ वही, पृ० २६

सामाजिकता :

अन्तर्मुखी प्रवृत्ति होने पर भी प्रसाद जी पूर्ण रूप से सामाजिक व्यक्ति थे । वे किसी की घृणा न करते थे । अपने परिचित व्यक्तियों के सुख-दुःख का वे सदैव ध्यान रखते थे । " किसी को देख न सके विपन्न " यह उनका सूत्र वाक्य था और वे उसे अमल में भी रखते थे । वे विवाद, विग्रह, विद्वेष भीड़ भाड़ आदि से बहुत डरते थे । साहित्यिक झगड़ों से सदैव दूर रह कर अपनी काव्य-साधना में लीन रहना उन्हें अधिक पसंद था । वे राग द्वेष से दूर रह कर समाज के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में लगे रहते थे । उनके हृदय में समाज, देश धर्म, साहित्य और संस्कृति का प्रेम हिलोरें लेता था ।[1]

प्रसाद जी को मिथ्याडम्बर पसंद न था । उनके विचार-व्यवहार और आचरण में कृत्रिमता तनिक भी नहीं थी । वे अत्यंत सादगी के साथ जीवन व्यतीत करना अच्छा समझते थे । विद्या, बुद्धि, बल, वैभव, रूप, यश आदि सब कुछ पाकर भी उन्हें तनिक भी गर्व न था । निन्दा और स्तुति में उनका मानसिक संतुलन समान रहता था । प्रसाद जी सच्चे मन से समाज-सुधारक भी थे । वे समाज की सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातों का बड़ी गहराई के साथ अध्ययन करते थे और सामाजिक उत्कर्ष के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहते थे । उनके समाज प्रेम की झलक उनके काव्यों में, नाटकों में, उपन्यासों में विद्यमान है ।

" ले चल वहाँ भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे धीरे "[2] नामक कविता तथा " आँसू " काव्य के कुछ छंदों के आधार पर उनको पलायनवादी बताया जाता है किन्तु वास्तव में वे पलायनवादी नहीं थे । पूर्ववर्ती पृष्ठों में अंकित

१ श्री जनार्दन द्विज, चरित्र रेखा, पृ० १५

२ लहर, पृ० १४

उनकी जीवनी के विवरण से स्पष्टतः इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि उन्होंने जीवन में आयी हुई विपत्तियाँ, संघर्ष तथा ज्येष्ठ बन्धु द्वारा छोड़े हुए ऋण इन सभी समस्याओं का निराकरण साहस और धैर्य के साथ किया था। अतः ऐसे सभी कथन समाज की विषमताको देख कर उनकी भावों की तीव्रता के द्योतक है। समाज में नित्य प्रति जो दुःख और हाहाकार, आदि उन्हें सुनाई पड़ते थे, उनको दूर करने के लिए वे प्रयत्नशील थे। वैसे प्रसाद जी ने पलायनवादिता का घोर विरोध किया है और समाज को उन्नत बनाने के लिये सदैव कर्मशीलता के साथ-साथ संघर्षमय जीवन व्यतीत करने तथा विघ्नों से टक्कर लेने का आदर्श प्रस्तुत किया है। वे घोर आशावादी थे। उनके हृदय में अदम्य उत्साह था। वे नियमित रूप से लिखा करते थे। वे कभी अपनी असमर्थता प्रकट करना नहीं जानते थे। वर्तमान का वे स्वागत करते और भविष्य की तनिक भी चिन्ता नहीं करते थे। वे विघ्नों से अकेले ही टक्कर लेते हुए निःस्वार्थ कर्म में लीन रहते थे।

रुचि एवं व्यसन :

प्रसाद जी प्रेम और सौन्दर्य के पुजारी थे। ललित कलाओं के प्रति बचपन से ही उनकी रुचि थी। साहित्य एवं कला की उपासना में वे अपना अधिक से अधिक समय लगाते थे और भारतीय इतिहास का गहराई के साथ अध्ययन किया करते थे। साथ ही उनको संगीत का भी बड़ा शौक था। वे मूर्तिकला को भी बड़ी रसिकता के साथ निहारते थे। सारनाथ के संग्रहालय में वे मूर्तियों का घंटों निरीक्षण करते थे। भगवान बुद्ध की सौम्य मूर्तियों के सौन्दर्य में उनका मन अधिक रमता था। प्रसाद की यह स्वभावगत विशेषता, रुचि तथा प्राचीन इतिहास का गम्भीर अध्ययन आदि का प्रभाव उनके नाटकों तथा कविताओं में पूर्णतया दिखायी पड़ता है जिस पर आगे प्रसंगानुसार विचार किया जायेगा।

प्रसाद जी को प्राकृतिक सौन्दर्य अधिक प्रिय था। प्रकृति की रमणीय छटा देखने के लिये वे प्रायः सारनाथ घूमने जाते। नदी, झरना, कुंज, गुफा, समुद्र, लहर, पवन, वसंत आदि प्रकृति के उपकरण उनकी प्रेरणा के मुख्य तत्त्व थे। वे प्राकृतिक सौन्दर्य के पूर्ण निरीक्षक एवं आस्वादक थे।

प्रसाद जी को पान, इत्र तथा फूलों का बड़ा शौक था। वे इत्र परखना खूब जानते थे। वे अपने घर के बगीचे में नित्य घूमने जाते थे। वहाँ पर गुलाब, जूही, बेला, रजनीगंधा इत्यादि जब फूलते तो वे उन्हें सतृष्ण नेत्रों से देखा करते थे। वहीं पर पारिजात के वृक्ष के नीचे प्रसाद जी ने एक पत्थर की चौकी डाल रखी थी, जिस पर बैठना उन्हें अत्यंत प्रिय था।[1] प्रसाद जी को भोजन का भी बड़ा चाव था। वे स्वयं बड़ा सुंदर एवं रुचिकर भोजन तैयार कर लेते थे। कभी कभी वे मित्रों के साथ बगीचे आदि में घूमने जाते और दिन-भर वहीं रहते और अपने हाथ से भोजन तैयार करके सब के साथ खाया करते थे। भीड भाड से वे घबराते थे, फिर भी उनको मेला, तमाशा देखना अच्छा लगता था। मित्रों के साथ नौका विहार करना भी उन्हें पसन्द था।[2] प्रसाद जी नवीनता के बड़े प्रेमी थे। उनके बैठने के स्थान पर नित्य-नई सजावट होती रहती थी। वे थोड़े से ही परिवर्तन से नवीनता उत्पन्न किया करते थे।

अन्य चारित्रिक विशेषताएं :

प्रसाद जी भारतीय संस्कृति की मर्यादा का पालन करते थे। वे अत्यंत सात्त्विक मनोवृत्ति के व्यक्ति थे। वे आजीवन निरामिष आहारी बने रहे। वे कभी भी मादक वस्तुओं का सेवन नहीं करते थे। हाँ भांग-ठंडाई अवश्य

१ प्रसाद और उनका साहित्य, पृ० १०

२ प्रसाद की याद, संस्मरण, पृ० ७

पी लिया करते थे ।

प्रसाद जी का संबंध श्यामा, भगवती, किशोरी आदि वेश्याओं के साथ रहा, लेकिन उनका जीवन जल में कमल पत्रवत् था अर्थात् वे उस व्यभिचार से दूर ही रहे और कभी भी अपने सात्विक जीवन को कलंकित नहीं किया ।[1] वे बड़े निष्कपट और उदार स्वभाव के व्यक्ति थे । वे बड़े त्यागी भी थे । यदि अपनी हानि से दूसरों का भला होता हो तो त्याग वीर की भांति वे स्वेच्छा से तुरंत हानि उठा कर दूसरों का भला करते थे । वे दूसरों को कभी हानि नहीं पहुंचाते थे । प्रसाद जी ने कभी किसी पत्र पत्रिका से पुरस्कार रूप में एक पैसा भी नहीं लिया । पुरस्कार रूप उनको जो भी राशि प्राप्त हुई वह सब उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी को अपने बड़े भाई के स्मारक स्वरूप दान कर दिये ।

जीवन संघर्ष के कारण प्रसाद के हृदय में असीम वेदना और करुणा ने अपना घर बना लिया था । उनकी वेदना माधुर्य भाव की द्योतक थी और हृदय में मादकता की भी सृष्टि करती थी । उनके करुण संगीत में रुलाने और उल्लासित करने की भी शक्ति थी ।

प्रसाद जी बड़े ही धार्मिक एवम् उत्सव-प्रिय व्यक्ति थे । वे शिव को परब्रह्म मानते तथा शिवरात्रि का उत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया करते थे । निर्भीकता का गुण उन्होंने अपने बड़े भाई से सीखा था । इसी के कारण वे अकेले ही अनेक आपदाओं का डटकर सामना करते रहे । अपनी निर्भीकता के कारण सामाजिक उत्तरदायित्वों का भार अपने कंधे पर उठा कर अपने व्यवसाय एवम् साहित्य रचना के कार्यों में क्रमशः उन्नति करते रहे ।

ठठठठठठठठठठठठठठठठ

1 प्रसाद ~~जी~~ और उनका साहित्य, पृ० २६

मित्र गोष्ठी :

प्रसाद जी की मित्र-मंडली में काशी के सभी साहित्यकार सम्मिलित थे। उनके अंतरंग मित्रों में से श्री रायकृष्णदास विनोदशंकर व्यास, केदारनाथ पाठक, लक्ष्मीनारायण सिंह आदि प्रसिद्ध हैं। यह मित्र मंडली शाम को नारियल टोलेवाली दूकान के सामने चबूतरे पर नित्य मिलती थी। वहां पर कुछ नये-नये मित्र तथा काशी के साहित्यकार भी आते रहते थे। एक रामानंद महाशय भी वहां अवश्य पहुंचते और अपने चुटीले सवैये तथा घनाक्षरी सुनाया करते थे।[1] कुछ सुदूरवर्ती साहित्यकार प्रसाद जी के घर पर कभी-कभी आते रहते थे, जिनमें से अधिकांश उनके प्रिय मित्र थे और जिनके साथ साहित्य के बारे में प्रसाद जी प्रायः बड़ी देर तक बातें किया करते थे। उनमें से सर्व श्री मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रा-नंदन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला ", महादेवी वर्मा, रामचन्द्र वर्मा, प्रेमचंद, जैनेन्द्र कुमार, केशवप्रसाद मिश्र, बालकृष्ण शर्मा, शांतिप्रिय द्विवेदी आदि प्रसिद्ध हैं। जब प्रसाद जी नागरी प्रचारिणी सभा में जाते तो वहां डा० श्याम-सुंदरदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन, अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि से मिलते रहते थे। वहां के ग्रंथपाल श्री केदारनाथ पाठक तो प्रसाद जी के अभिन्न मित्र थे। इनके अतिरिक्त कुछ बाहर से आये हुए साहित्यिक भी प्रसाद जी के मित्र थे, जिनमें से पं० रूपनारायण पांडेय, श्री शिवपूजन सहाय, श्री गोविन्द वल्लभ पंत, पं० विश्वम्भरनाथ जिज्जा, उग्रजी, बेढब बनारसी, " सुमन " जी, " बेनीपुरी " जी, पं० लक्ष्मी नारायण मिश्र, पं० नंददुलारे बाजपेयी तथा द्विजजी आदि प्रसिद्ध हैं। उस काल के सभी हिन्दी के साहित्यकारों का प्रसाद जी से अच्छा परिचय था और वे प्रायः प्रसाद ब जी की मित्रगोष्ठियों में सम्मिलित होकर अपनी अपनी रचनाएं सुनाते, प्रसाद जी की रचनाएं सुनते तथा इधर-उधर की गप शप भी खूब किया करते थे।

---

१ प्रसाद और उनका साहित्य, पृ० ८, शीर्षक

साहित्यिक प्रवृत्तियाँ :

प्रसाद जी के यहाँ बहुत पहले से कवियों कलावंतों का आवागमन लगा रहता था । पूर्ववर्ती पृष्ठों में उनके काव्यारम्भ तथा नौ वर्ष की ही अवस्था में एक सवैया लिख कर अपने काव्य गुरु को आशीर्वाद प्राप्त करने की घटना का उल्लेख किया जा चुका है । कालान्तर में उक्त आशीर्वाद या भविष्य-वाणी यथार्थ सिद्ध हुई । अन्नप्राशन संस्कार के समय प्रसाद जी ने सब ~~आकर्ष~~ आकर्षक चीजों को छोडकर लेखनी पसंद की थी । यह घटना उनके जन्मजात कवि होने का संकेत करती है । नौ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने " लघु कौमुदी " और " अमरकोश " जैसे संस्कृत ग्रंथ कंठस्थ कर लिये थे । उनकी पहली रचना जिसका प्रकाशन जुलाई १९०६ ई० में " भारतेन्दु " में हुआ था " कलाधर " उपनाम से ही लिखी गई थी । [1] प्रथम रचना के प्रकाशन के समय प्रसाद जी की आयु १७ वर्ष के लगभग थी । पिताजी के निधन के बाद प्रसाद जी दुकान पर बैठने लगे थे और वहाँ पर कागज न मिलने पर वे बही के पन्ने फाडकर ही कविताएं लिख लिया करते थे । इसके लिए अग्रज शंभुरत्नजी ने उन्हें कई बार डांटा भी, किन्तु फिर भी उनकी आँख बचाकर प्रसाद जी की काव्य-साधना चलती रही । भाई से उन्हें विरोध मिल रहा था किन्तु रसमयसिद्ध जी से उन्हें प्रेरणा, प्रोत्साहन और प्रशंसा अतः उनका काव्याभ्यास बढ़ता ही गया ।

काव्य-रचना की प्रारंभिक प्रेरणा तो उन्हें रसमयसिद्ध जी से मिली किन्तु उनके साहित्य-गुरु महामहोपाध्याय देवीप्रसाद शुक्ल कवि चक्रवर्ती जी रहे हैं । १९०६ ई० से प्रसाद जी की नियमित काव्य-साधना प्रारंभ हुई और सन् १९२६ तक यह साहित्यिक प्रवाह अविरल रूप से गतिशील रहा ।

१ कविता इस प्रकार है :-

सावन आये वियोगिनी को तन, आली अनंग लगे अति सावन ।
लावन हिय लगी अबला तडपे जब बिज्जु छटा छवि छावन
छावन कैसे कहूं मैं विदेश लगे जुगनूं हिय आग लगावन
गावन लागे मयूर " कलाधर " भूमि के मेघ लगे वर सावन ।

निष्कर्ष :

"प्रसाद जी अपने युग के सब से बड़े पौरुषवान् कवि थे। प्रसाद जी का काव्य शक्ति और एक मात्र शक्ति की साधना का एक अविरल प्रवाह है। उनके पुरुष [illegible] और उनकी नारियाँ दोनों ही इसी शक्ति की साधना में तन्मय हैं। प्रसाद जी हिन्दी के सब से प्रथम और सब से श्रेष्ठ शक्तिवादी और आनंदवादी कवि थे। प्रसाद जी का साहित्य सौन्दर्य और कल्पना प्रधान होता हुआ भी उनके काव्य-प्रतीक वास्तविक जीवन-रस से अभिषिक्त हैं। जीवन से वैराग्य, तटस्थता और निषेधों का प्राबल्य हम उनमें कहीं नहीं पाते। छायावाद, जिसके ये आविर्भावक थे, उनकी पुरुष वृत्ति का साधक हुआ है। नारी और पुरुष दोनों में शक्ति की एक ही तरंग समान रूप से भरने के कारण प्रसाद जी में किसी प्रकार का मानसिक स्खलन या दुर्बलता नहीं देख पड़ती। प्रसाद जी संस्कृत और स्वस्थ नारी और पुरुष की शक्ति का रहस्य ही प्रकट करते रहे। शक्ति का परिचय करा देना ही दुःख का उच्छेद कर डालना है। उनका यही विधान पक्ष था। जहाँ तक रूढ़ि है वहाँ तक शुद्ध शक्ति नहीं है, इसलिये प्रसाद जी रूढ़ियों का तिरस्कार करके एक मात्र शक्ति के ही साधक हुए।[1]

प्रसाद के साहित्यिक जीवन का आरंभ एक कवि के रूप में हुआ था। उनकी आरंभिक रचनाओं में अतीत की सुखद स्मृतियों का एक हल्के विषाद से भरी प्रतिक्रिया दिखाई दी साथ ही उनमें यौवन और शृंगार की अतृप्त अतिशयता भी लगी हुई थी। " चित्राधार " और " कानन कुसुम " के छाया संकेतों में इन्हीं दबी भावनाओं का आभास मिलता है।[2] और " झरना " की -

" छेड़ो मत यह सुख का कण है
उत्तेजित कर मत दौड़ाओ
यह करुणा का थका चरण है। "[3]

1 नन्द दुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, पृ० २० (२) वही, पृ० २५
3 जयशंकर प्रसाद, झरना, पृ० 31

आदि पंक्तियों में इसी की गूंज है । " आंसू " के कवि का यह वैयक्तिक पक्ष पूरी तरह उभर आया है, परंतु इसी के साथ कवि की एक अभिनव दार्शनिकता उतनी ही प्रभावशालिता के साथ काव्य का अंग बन गई है । उद्दाम शृंगारिक स्मृतियों के साथ संपूर्ण समाधानकारक दार्शनिकता " आंसू " की विशेषता है । भावनाओं के असाधारण उद्वेग के साथ उतनी ही प्रगाढ दार्शनिक अनुभूति का योग रचना में एक अपूर्व मार्मिकता और संतुलन ले आता है । [1]

प्रसाद जी के जीवन का वेदना संपन्न-दार्शनिक दृष्टिकोण पूर्ण रूप से समरसता और आनंदवाद में प्रस्फुटित हुआ है । " आंसू " के अनन्तर प्रसाद जी के प्रगीतों में वह उद्वेग नहीं मिलता । " लहर " में अधिक परिस्कृत सौन्दर्य चित्रण और संयमित भावना धारा है । दो-चार गीतों में अतीत की मनोरम स्मृतियां भी आई है । " ओ सागर संगम अरुण नील " जैसे कुछ गीत प्रसादजी की पुरी-यात्रा के स्मारक है और प्राकृतिक सौन्दर्य की अनोखी भांकी से समन्वित है । प्रेम और करुणा की तात्त्विक भावना का चित्रण " लहर " में महात्मा बुद्ध के जीवन-प्रसंग और उनकी दार्शनिकता की पार्श्वभूमि पर किया गया है । " शेरसिंह का शस्त्र समर्पण " और " प्रलय की छाया " के रूप में दो आख्यानक गीतियों में क्रमशः " पराजित वीरत्व " और " सौन्दर्य गर्व " का विवरण पूर्ण मनोवैज्ञानिक चित्रण है । इसमें " बीती विभावरी जाग री " शीर्षक वह जागरण गीत भी है जो उनकी युग-चेतना का परिचायक प्रतिनिधि गीत कहा जा सकता है । [2] " कामायनी " प्रसाद जी के कृतित्व का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है । उसमें सर्वांगपूर्ण जीवन दर्शन, नारी-पुरुष का संपूर्ण चित्रण और नई परिस्थितियों का व्यापक निरूपण है । नये ज्ञान का विस्तृत उपयोग उसमें किया गया है, किन्तु पूर्व निर्दिष्ट, प्राचीन भारतीय इतिहास का गहन अध्ययन

ꝏꝏꝏꝏꝏꝏꝏꝏꝏ

१ नंददुलारे बाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, पृ० २६

२ वही

का योग भी इसमें कम नहीं है । " कामायनी " में कवि प्रसाद ने आदि मानव का आख्यान किया है और उसे प्राचीन कथावस्तु का सहारा लेकर नये उपकरणों से सज्जित किया है । कथानक में मनोविज्ञान के साथ मानव सभ्यता के विकास का वैज्ञानिक चित्र भी दिखाया गया है । इस प्रकार काव्य का कथानक तो नये विज्ञान का उपयोग करता है उसे गति और विस्तार देता है और इस विज्ञान सम्मत विकास की सार्थकता और आलोक देने के लिये कवि ने भारतीय दर्शन का सुन्दर उपयोग किया है । उसी के अनुरूप " कामायनी " में दो नारी चरित्र भी है एक " श्रद्धा " – भारतीय भावना और दर्शन की प्रतिनिधि, दूसरी " इडा " – नये वैज्ञानिक विकास का प्रतीक । इन दोनों का संतुलन और समन्वय नवीन भारतीय संस्कृति को " कामायनी " के कवि की नई देन है ।[1]

(२) कवि न्हानालाल जीवनी और व्यक्तित्व

प्राक्कथन :

गुजरात के प्रतिभाशाली और लोकप्रिय कवि दलपतराम के पुत्र रूप में कवि न्हानालाल " योग्य पिता की योग्य सन्तान " की उक्ति को चरितार्थ करते हैं । इस प्रकार कवि न्हानालाल को काव्य शक्ति और कवि प्रतिभा पालने में से ही प्राप्त थी । वे प्रकाश से प्रकाश की ओर जानेवाले और गुजरात में एक नये युग का निर्माण करनेवाले महाकवि थे । उनके पिता के नाम से दलपत युग कहा गया और न्हानालाल इसी युग के कीर्ति स्तंभ बने रहे और अपनी ज्योति से गुजरात को प्रभावित करते रहे । उनकी प्रतिभा उनके पिता से भी विशिष्ट प्रकार की थी । जिस पर प्रसंगानुसार आगे विचार किया जायगा ।

अध्ययन की आधारभूत सामग्री :

न्हानालाल का जीवन वृत्त लिखने में लेखक ने महाकवि की सभी

१ नंददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, पृ० २६

प्रमुख कृतियां जैसे – " केटलाक काव्यो ", " राजसूतो नी काव्य त्रिपुटी ", " न्हाना न्हाना रास ", " चित्रदर्शनो ", " ओज अने अगर ", " प्रेमभक्ति भजनावली ", " गीतमंजरी ", " दाम्पत्य स्तोत्रो ", " बाळ-काव्यो ", " सोहागण ", " पानेतर ", " हरिदर्शन ", "वेणु विहार ", "प्रज्ञाचक्षुना प्रज्ञाबिंदु ", " म्हेरामणना मोती ", " बसन्तोत्सव ", " कुरुक्षेत्र द्वारिका प्रलय ", " हरिसंहिता भाग १-२-३ (अपूर्ण), तथा उन पर लिखे गये शोध और आलोचना ग्रन्थों के साथ साथ उनके परिवार जनों से मिलने पर प्राप्त महत्त्वपूर्ण, प्रामाणिक एवं अद्यापि पर्यंत अप्रकाशित सामग्री राशि से भी सहायता ली है । कुछ ग्रंथों की प्रस्तावनाएं भी जैसे – म्हेरामणना मोती, प्रज्ञाचक्षुना प्रज्ञाबिंदु, अर्ध शताब्दिना अनुभव बोल, बसन्तोत्सव, हरिदर्शनो वेणुविहार, ओज अने अगर, चित्रदर्शनो, सोहागण – हमारे प्रस्तुत अध्ययन में सहायक हुई हैं । इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ऐसी सोलह रचनाओं की भूमिका लेखों से भी सूत्र संजोने का प्रयास किया है । जिन शोध ग्रंथों से भी एतद्विषयक सामग्री उपलब्ध हुई है, उनमें मुख्य इस प्रकार हैं –

(१) न्हानालालना भावप्रधान नाटको – ईश्वरलाल देव
(२) गुजराती साहित्यमां ऊर्मिकाव्य – प्रा० सुरेश दलाल
(३) कवि न्हानालालनी कवितामां व्यक्त थतुं जीवन दर्शन – डा० धनवन्त शाह
(४) गुजराती साहित्यनां ऊर्मि प्रधान काव्यो – डा० श्रीमति दिव्याक्षीबेन शुक्ल
(५) उपायन – विष्णुप्रसाद त्रिवेदी
(६) विवेचना – विष्णुप्रसाद त्रिवेदी
(७) रसदृष्टा कविवर – बालचन्द्र परीख
(८) न्हानालाल मधुकोष – अनंतराय रावळ
(९) न्हानालालना काव्यमां भाव प्रतीकनो प्रश्न – उमाशंकर जोशी

(१०) गंधाक्षत – अनंतराय रावळ

(११) अर्वाचीन काव्य साहित्यनां वहेणो – रामनारायण पाठक

(१२) ऊर्मिकाव्य – चीमनलाल त्रिवेदी

(१३) पत्रिका " कौमुदी " (त्रिमासिक)

श्री न्हानालाल जन्म सुवर्ण महोत्सव अंक सन् १९२७ पत्रिका –
कवि लोक – कुमारनी न्हानालाल विषे

(१४) न्हानालाल स्मारक ग्रंथ – चतुरभाई पटेल

(१५) काव्य विवेचन – श्री डोलरराय मांकड

(१६) न्हानालालनो काव्य प्रभात – प्रो० रमण कोठारी

पाराशर गोत्री – श्रीमाली

गोत्र – पाराशर

शर्म – भातक

प्रवर – वसिष्ठ, शक्ति, पराशर

देवी – वत्यक्षिणी

कवि न्हानालाल का वंशवृक्ष

रामचन्द
|
देवराम
|
त्र्यंबक सरवाडी – पत्नी जीवणीबाई
|
डाह्याभाई – (१) रामकुंवर बा
(२) अमृत बा
|
दलपतराम, मूलीबा, दिनकरराय

दलपतराम
|
पुरुषोत्तम, मोहनलाल, मगनलाल, छोटालाल, न्हानालाल, चमनलाल

न्हानालाल
|
मनोहर (पुत्र), अनुपम (पुत्र), विनोदिनी (पुत्री), आनंद (पुत्र), चंद्रकान्त (पुत्र), जयंत (पुत्र), नटवरलाल (पुत्र), उषा (पुत्री)

जीवनवृत्त जाति और वंश परिचय :

कवि श्री न्हानालाल का जन्म दिनांक १६ मार्च सन् १८७७ में अहमदाबाद में हुआ था। उनके पिता का नाम दलपतराम डाह्याभाई और माता का नाम रेवाबाई था। वे जाति के श्रीमाली ब्राह्मण थे। " कवि " उपनाम उन्हें पिता से प्राप्त हुआ था। वे वैभवशाली और कवि परिवार में उत्पन्न हुए थे। साहित्य के क्षेत्र में पिता दलपतराम का बड़ा गहरा प्रभाव था। उनके पिता के समय में अनेक विद्वज्जन आते रहते थे। इस प्रकार कवि न्हानालाल को सुसंस्कारपूर्ण पर्यावरण प्राप्त था, लेकिन उनको सन् १८८२ अर्थात् पांच साल की उम्र में लोधिका राजकोट विद्याभ्यास के लिये जाना पड़ा।

बाल्य काल :

उस समय की सामाजिक प्रथा के अनुसार छः साल की उम्र में ही (सन् १८८२ में) उनकी सगाई हो गई। भावी पत्नी का नाम माणेकबहन था उस समय उनकी उम्र तीन साल की थी। सन् १८८४ में लोधिका में ही प्रायमरी दूसरी कक्षा में थे। सन् १८८५ में मातुश्री रेवाबाई का निधन हुआ। इस प्रकार मातृ सुख से ८ वर्ष के पश्चात् पूर्ण रूप से वंचित रहे। सन् १८८७ में उनका, ब्राह्मण होने के नाते यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। प्रारंभ से ही न्हानालाल बड़े नटखटी थे और पढ़ने -लिखने में मन नहीं लगता था। घूमना, फिरना और ऊधम मचाना यही उनकी बचपन की प्रवृत्तियाँ थी। वे सन् १८८७ में घर से भाग कर वढवाण गये और वहाँ भी जम कर न रहे और वहाँ से १८८९ में सावरकुंडला में विद्याभ्यास करने लगे लेकिन पढ़ने में रुचि नहीं थी। इस प्रकार कवि का घुमक्कड़ जीवन देख कर कवि दलपतराम ने उनका लग्न माणेकबहन के साथ बाल्यकाल में ही अर्थात् सन् १८९० में वैशाख शुक्ल पंचमी को किया। उस समय न्हानालाल की आयु १३ साल की थी।

शिक्षा के क्षेत्र में अरुचि :

न्हानालाल लिखने पढने में प्रायः दब्बू थे। सन् १८९२ में "शारद तमिस्रा" ने कविता जन्मनुं वर्ष" माना गया।[1] इसी वर्ष में कवि ने चार बार विद्यालय बदले। पुनः घर से भागकर अहमदाबाद, वहाँ से वढवाण। वहाँ दाजीराज हाईस्कूल में प्रवेश प्राप्त किया। वहाँ से अजमेर कालेज गये और फिर अहमदाबाद वापस आये।

अजमेर में उनके मित्र के पिता के निधन पर कवि ने "एक आश्वासन काव्य" शीर्षक कविता लिखी। यह काव्य अजमेर के पास तारागढ की छाया में, प्राकृतिक सौन्दर्य की गोद में स्फुरित हुआ।

आंग्ल कवि की यह उक्ति वहाँ चरितार्थ हुई। काव्य गंगोत्री का वहीं से प्रारंभ हुआ।[2] यह काव्य अप्राप्य है।

अध्ययन के क्षेत्र में आकस्मिक परिवर्तन :

इस प्रकार सन् १८९२ ई० तक का समय घुमक्कडी में ही बीता। सन् १८९२ में वे मोरबी (सौराष्ट्र) गये और वहाँ की हाईस्कूल के अध्यापक काशीराम सेवकराम दवे के निकट संपर्क में आये। जैसे पारस लोहे को सोना बना देता है वही चमत्कार यहाँ हुआ और यही वर्ष उनका जीवन-परिवर्तन का वर्ष माना जा सकता है और तत्पश्चात् कवि की क्रमशः विद्या के क्षेत्र में उन्नति होती रही। दिवान न्हानालाल को नवजन्म का अवसर प्राप्त हुआ। नई साहित्य दृष्टि की शिशु अवस्था प्रकटी और इतिहास अध्ययन में रुचि उत्पन्न हुई। १८९२ में ही कवि ने बंबई विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण

१ कवि श्री न्हानालाल स्मारक ग्रंथ – जीवन प्रसंगो, पृ० १

२ कवि श्री आनंद न्हानालाल के सौजन्य से (आपणां सागर रत्नो, भाग १)

की । इस प्रकार काशीराम दवे गुरुजी ने न्हानालाल को अपने संसर्ग से स्वर्ण बनाकर समाज में रखा ।

सन् १८९२ में ही कवि को अपने पिता दलपतराम कवि की काव्य रचनाएं पढने और अनुकरण करने में रुचि जगी और दलपतराम कवि रचित " हरीलीलामृत " में से अलग-अलग प्रबन्ध जैसे - " नाग प्रबन्ध ", " कमल प्रबन्ध ", " कपाट प्रबन्ध ", " छत्री प्रबन्ध ", पुष्पमाला प्रबन्ध ", " धनुष प्रबंध " - अध्ययन किये और तुलसी कवि लिखित काव्य कौस्तुभ में से चित्र प्रबन्धों का अनुकरण किया । यह साहित्य कृति अप्राप्त है,[1] किन्तु इसकी सूचना कवि ने सन् १९४४ के अपने भाषण में दी थी ।[2]

कवि का महाविद्यालय का जीवन :

न्हानालाल मैट्रिक पास होने के बाद बंबई गये और सन् १८९४ में वहां के एलफिन्स्टन कालेज में प्रवेश प्राप्त किया । अब उनका मन विद्याध्ययन में स्थिर हो चुका था फिर भी प्रिवियस (प्रथम वर्ष) में अनुत्तीर्ण रहे । वहां कालेज में अभिनीत कालिदास का नाटक " शाकुन्तल " देखा जिसकी नाट्यकला और भावकला से प्रभावित हुए । नाटक प्रेक्षक बन कर देखा एक रुपिया टिकिट था । इस प्रकार संस्कृत नाट्यकला की रुचि कवि के जीवन में प्रकट हुई । कवि को अध्ययन के साथ-साथ क्रिकेट खेलने का भी बडा शौक था ।

क्रिकेट का शौक :

कालेज की क्रिकेट टीम बनी थी उसमें ११ खिलाडियों में से १० खिलाडी पारसी थे, लेकिन ११ वें खिलाडी न्हानालाल थे । इस प्रकार खेलने के क्षेत्र में भी कवि का मूल्यांकन हुआ ।

---

१ न्हानालाल - १११ वर्षनी अखंड ज्योत काव्योपासना ।

२ अर्ध शताब्दिना अनुभव बोल, पृ० ४१

सन् १८९५ ई० में कवि ने कालेज का प्रथम वर्ष उत्तीर्ण किया। कवि दलपतराम सुधारवादी थे इसलिए न्हानालाल और उनकी पत्नी माणेक बहन साथ-साथ पढ़ते थे। कवि श्री एलफिन्स्टन कालेज में पढ़ते थे और माणेक बा लेनपाल कन्याशाला में पढ़ती थी।

सन् १८९६ ई० में बम्बई में प्लेग की बीमारी फैली थी। इसलिए कवि ने बम्बई छोड़ा और अहमदाबाद की गुजरात कालेज में इन्टर आर्ट्स में प्रवेश प्राप्त किया। उन्होंने अन्य भाषा के विकल्प में फारसी भाषा (Persian Language) रखी थी। कवि ने अपने भाषण में कहा था, " गुजरात कालेज मां मारे दिशा निर्णय थयो - - - - - - साहित्यनो अने जीवनन्नो "[1]

सन् १८९७ बी०ए० में प्रवेश किया और ऐच्छिक विषय में तत्त्वज्ञान (Philosophy) लिया। अहमदाबाद से एक मासिक पत्रिका " ज्ञान सुधा " प्रकाशित होती थी। इसमें कवि ने अपनी प्रथम काव्य रचना " श्वेतांबरी सन्यासिनी "[2] भेजी और वह छापी गई। यह सर्व प्रथम रचना " प्रेम भक्ति " के उपनाम से प्रारंभ हुई। बाल्य स्वभाव की पुरानी स्मृति ताजी हो जाती थी और वहां भी नटखटी और शैतानी करते थे। उनकी टुकड़ी " मूल भड़कामणी टोली "[3] के नाम से प्रसिद्ध थी।

पिता दलपतराम का निधन-डोलन शैली का जन्म :

सन् १८९८ में ज्युनियर बी० ए० ऐच्छिक विषय " तत्त्वज्ञान " इसी वर्ष पिता दलपतराम का निधन हुआ और तृतीय संयोग यह हुआ कि इसी वर्ष में कवि की विशिष्ट शैली " डोलन शैली " का जन्म हुआ। कवि की यह

१ कवि श्री न्हानालाल स्मारक ग्रन्थ - जीवन प्रसंगो, पृ० १

२ केटलांक काव्यो

३ श्री आनंदजी न्हानालालजी के सौजन्य से प्राप्त

मान्यता थी कि गेयता काव्य के लिए आवश्यक नहीं है, वाणी के अर्थ में एक प्रकार का गुंजन-कंपन होना चाहिए। भावप्रधान काव्यों के लिए राग-रागिनी की आवश्यकता नहीं है। काव्य रस का प्रवाह मानव अंतर में तीव्रता से प्रवेश करता है तब मनुष्य भाव विभोर होकर डोलता है, गुंजता है इसे " डोलन शैली " कहते है। इसका विस्तृत विवेचन पंचम अध्याय में दिया है। इसी शैली का प्रथम नाटक " इन्दुकुमार " अंक-१ लिखा गया, जो इस नई शैली का सर्व प्रथम नाटक था। इसी वर्ष पुराने Deccan College में कवि ने " वसंतोत्सव " काव्य लिखा।[१] डोलन शैली के २०-२५ दिनों पश्चात् पिता दलपतराम का निधन हुआ (निधन तिथि २५ मार्च सन् १८९८ शुक्रवार)।

सन् १८९९ में आपने स्नातक (बी०ए०) की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९०० में आप ज्युनियर एम०ए० में इतिहास विषय लेकर प्रविष्ट हुए। सन् १९०१ में " कुरुक्षेत्र महाकाव्य " का प्रारंभ, एवं गीता का विराट दर्शन अध्याय ११वां का अनुवाद किया। १९०१ में दिसम्बर में एम० ए० उत्तीर्ण हुए और अहमदाबाद में प्रार्थना समाज में वार्षिक उत्सव के समय पर भाषण दिया था। [redacted] भाषण का विषय था - 'Uddhav's Mission to Gopal'

सरकारी नौकरी का प्रारंभ :

सन् १९०२ में सादरा (शहादरा) स्काट कालेज में अधिष्ठाता नियुक्त हुए और एक प्रकार से गृहस्थाश्रम का प्रारंभ यहां से मानना चाहिए। सन् १९०४ जुलाई में सादरा कालेज छोड कर राजकोट की राजकुमार कालेज में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। इसी वर्ष " मानो संदेश "पुस्तक लिखी जही

१ अर्ध शताब्दिना अनुभव बोल, पृ० ४४

" ओज अने अगर " के नाम से सन् १९२२ में छापा गया । इसी वर्ष में कवि ने जूनागढ और सौराष्ट्र में भी भ्रमण किया और पूना के महानुभाव सिन्देबुआ के साथ उनका परिचय हुआ ।[1]

सन् १९०५ में कवि ने पाराशर आदि के गृह्य सूत्रों का गुजराती में अनुवाद किया । १९०५ की " साहित्य परिषद " में कवि कान्त ने न्हानालाल की प्रशस्ति में " ऊग्यो प्रफुल्ल आशीर्वर्णो चन्द्र " काव्य लिखा । सन् १९०५-६ में राजकोट में हरिजनों के लिये रात्रिकालीन अंत्यज शाला प्रारंभ की । इसी वर्ष संघमित्रा, जहांगीर-नूरजहान और अकबरशाह लिखने की विचार परम्पराएं प्रविष्ट हुई और महानुभाव सर चिम्मनलाल सेतलवाड से सर्व प्रथम भेंट हुई ।

सन् १९०६ में प्रो० गज्जर से भेंट हुई । उनके साथ ये नडियाद गये और दीवान बहादुर केशव हर्षद ध्रुव से भी परिचित हुए । केशव हर्षद ध्रुव ४० वर्ष तक गुजरात कालेज में गुजराती के प्रोफेसर थे । इस प्रकार कवि उत्तरोत्तर विद्वानों के सम्पर्क में आने लगे ।[2] इसी वर्ष कवि ने बड़ौदा की और नर्मदा किनारे के स्थलों की यात्रा की ।

सन् १९०७ में सुरत कांग्रेस में नृसिंह विभाकर से भेंट हुई । गीता का अनुवाद प्रा० केशव हर्षद ध्रुव को निरीक्षणार्थ दिया था और महामहोपाध्याय शंकरलाल शास्त्री गीता के १ से १८ समस्त अध्यायों का पूर्ण रूप से निरीक्षण किया ।

सन् १९०८ में राजकोट में हिन्दु कन्याशाला स्थापित की । माणेक बहन उसी शाला में Lady Superintendent नियुक्त हुई । इसी स्कूल की एक छात्रा " प्रेमलीला"विट्ठलदास वर्षों विद्यालय की प्रधान संचालिका

---

१ कवि आनंद न्हानालाल के सौजन्य से

२ वही

बनी । इसी वर्ष कवि ने बडौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड को लिखा कि गुजरात विश्वविद्यालय की अलग से स्थापना की जाय ।

सामाजिक समानता के प्रति :

सन् १९०८ में कवि के घर पर हिन्दू, इस्लामी, पारसी और अंग्रेजों का सम्मिलित बडा भोज रखा गया । इसमें Miss Lilean Edger Theosophist को भी आमंत्रित किये थे । सावनूर के नवाब साहब भी भोज में शामिल थे । खीर पूरी का भोज था । लेकिन बैठक भारतीय पटले पर बैठकर और तरीका अंग्रेजी – कांटे चम्मच से खाने का । इस प्रकार कवि ने सामाजिक समन्वय की ओर कदम उठाया ।

सन् १९०९ में अेजन्ट टु धि गवर्नर सौराष्ट्र के सर्वोपरि Claud Hill के निकट संपर्क में आये । उनसे कहा " आत्मबल हरि ए बह्यं हतुं "[1] इसी वर्ष में कवि ने सीलोन प्रवास किया और न्युरेलिया सरोवर और पेड्रातालागाला के शिखरों से प्रभावित हुए । न्युरेलिया सरोवर के किनारे प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रभावित होकर " कुलयोगिनी काव्य " लिखा ।[2] इसी वर्ष में " इन्दुकुमार " नाटक अंक: १ प्रकाशित हुआ ।

सन् १९१० में गोवरधन जयंति बम्बई में मनायी गई । वहां कवि श्री ने " जगत कादम्बरीओं मां सरस्वतीचंद्र " इस विषय पर भाषण देकर " सरस्वतीचन्द्र " की सर्वोपरिता प्रतिपादित की । बम्बई में मलबार हिल के पार्श्व में दरियाई महल में शरदपूर्णिमा के उपलक्ष में एक बडा आयोजन किया गया था । इसी प्रसंग पर पढियारजी और मस्त बाबा मोहनदास जी के भजन,

१ अर्धशताब्दीना अनुभव बोल, पृ० ५७–५८

२ केटलाक काव्यो

गीत आदि भी रखे गये थे ।

सन् १९११ में कवि श्री ने " राजपूतोंनी काव्य त्रिपुटी " का तीसरा काव्य लिखा ।

सन् १९१२ में सुरत में " सरस्वतीचंद्र " नाटक पर कुछ मतभेद रहा और प्रो० गज्जर ने कवि श्री को एक नाटक लिखने का आदेश दिया, जिसके फलस्वरूप " जया-जयन्त " नाटक की रचना हुई । कवि श्री की आत्मपुत्री सुमतिबहन लल्लुभाई महेता ने कवि श्री की " डोलन शैली " का पूर्ण रूप से अनुकरण किया । स्व० सुमति बहन बहुत छोटी आयु २१ वर्ष में ही स्वर्गवासिनी बनी । उसके निधन पर कवि ने उनके पिता लल्लुभाई महेता को आश्वासन दिया था कि कवि के शब्दों में : लल्लुभाई साहेब

" तमे पुत्री खोई छे ० में ए आत्मपुत्री खोई छे गुजराते काव्यपुत्री खोई छे० ईश्वरे आयुष्य अर्प्यां होत तो आपणो साहित्यनो इतिहास आज संभारतो होत आपणी स्वर्गस्थपुत्रीने "

(भाषण स्वप्न स्वामी अथवा वसंतनो टेलियो, पान १६)

" लल्लुभाई साहब तुमने पुत्री खोई है मैंने वही आत्मपुत्री खोई है, गुजरात ने काव्यपुत्री खोई है । ईश्वर ने यदि आयुष्य दिया होता तो आज अपना साहित्य का इतिहास अपनी स्वर्गस्थ पुत्री को याद करता "

श्रद्धा का चमत्कार :

सन् १९१२ ई० में कवि पोरबंदर से द्वारका दर्शनार्थ गये, लेकिन टेरा (पडदा) आ गया था । वह यह सूचित करता था कि दर्शन का निषेध था । कवि की आत्मा को बड़ी ग्लानि हुई और तीव्र भावुक बनकर प्रार्थना कि जिसके फलस्वरूप टेरा एकाएक गिर पड़ा और कवि सहित सब भावुकों को कृष्ण के दर्शन

हुए । वे बड़े आनंदित हुए । इसी भक्तिभावना से प्रेरित होकर कविश्री ने " हरिदर्शन " काव्य की सुष्ठु रचना सन् १९४२ में की । इसी वर्ष में "गायिका " नाटक की रूपरेखा भी तैयार की ।

सन् १९१४ में कश्मीर का प्रवास किया । परीमहल और चश्मेशाही का सौन्दर्य निहार कर प्रभावित हुए । इन्हीं स्थलों के नजदीक बैठकर " उषा " नाटक लिखा गया जो सन् १९१८ में प्रकाशित हुआ । [१] इसी वर्ष सन् १९१४ में राजकोट से क्रिकेट टीम वडोदा खेलने के लिये आई थी उसमें कवि श्री कैप्टन बन कर आये थे ।

सन् १९१५ में राजकोट में आप सरन्यायाधीश के पद पर नियुक्त हुए । राजकोट की वैष्णवों की हवेली कवि के निरीक्षण में रखी गई । वहां कवि ने स्त्री और पुरुषों को दर्शन के लिये अलग अलग व्यवस्था की । इसी वर्ष में कवि ने पुनः नर्मदा के तीर्थस्थानों की यात्रा की – चांदोद, करनाली, मालसर, व्यास आदि ।

सन् १९१६ में माथेरान से राजकोट वापस जा रहे थे । बीच में ही बम्बई में आर्यभुवन में कवि का व्याख्यान आयोजित किया गया । " ईशावास्योपनिषद " का समश्लोकी अनुवाद था । यही व्याख्यान " समालोचक " पत्रिका में छापा गया । श्रोताओं में श्री कनैयालाल माणेकलाल मुनशी उपस्थित थे ।

सन् १९१७ में कालिदास रचित मेघदूत का समश्लोकी अनुवाद किया । इसी वर्ष पूरे सौराष्ट्र के विद्याधिकारी *Educational Officer* नियुक्त हुए । चंद बारोट की जयंति वडोदा में मनाई गयी उसमें प्रमुख के पद से व्याख्यान दिया ।

---

१ श्री आनंद न्हानालाल के सौजन्य से ।

सन् १९१८ में आपने आदर्श ग्राम (Ideal Village) का स्वप्न मूर्त करने का प्रयास किया । सौराष्ट्र के दरबार गोपालदास के ढसा गांव में यह प्रयास किया । शिक्षण का खर्च दरबार का और परिश्रम कवि न्हानालाल का जिसके फलस्वरूप १५०० की बस्ती में पांच पाठशालाएं बनाई गईं । काठियावाड सेवा समाज की स्थापना की और उसके प्रथम प्रमुख बने । इस सन्दर्भ में कविश्रेष्ठ रवीन्द्रनाथ टागोर को आमंत्रित किया और उनके साथ पूरे काठियावाड का प्रवास किया ।[1]

सन् १९१९ में जोधिका गांव में कन्याशाला का उद्घाटन किया । इसी गांव में कवि श्री पढते थे ।[2] काठियावाड में अकाल सेवा समाज की स्थापना की और उसके प्रमुख बनाये गये । ढसा (काठियावाड) गांव में अंत्यज परिषद् के प्रमुख रहे । इस प्रकार कवि सामाजिक आयोजनों में हाथ बंटाते थे ।

सन् १९२० में रायसांकली गांव में एक पाठशाला का उद्घाटन किया । इसी वर्ष पालीताणा शहर में श्री महावीर जयंती के शुभ अवसर पर प्रमुख बनाये गये । इसी वर्ष भावनगर शहर में " जगत् साहित्यमां गुजराती साहित्य " इस विषय पर व्याख्यान दिया ।

दासत्व का त्याग :

भारत की राजकीय परिस्थिति बीसवीं शताब्दि के प्रारंभ से ही बडी शोचनीय थी । बंग भंग का प्रसंग, तिलक की गिरफ्तारी और मुकद्दमा, क्रांति की हिंसक घटनाएं, जर्मनयुद्ध, गांधी की असहकार की नीति और जलियाँवाला बाग की घोर कत्ले आम । इन सब घटनाओं का कवि न्हानालाल पर बडा गहरा प्रभाव पडा । उन्होंने ब्रिटिश राज्य की बडे वेतनवाली जगह का

१ कवि न्हानालाल स्मारक ग्रंथ - कविवर न्हानालालना जीवन प्रसंगो, पृ० २

२ कवीश्वर दलपतराम, भाग-२

त्यागपत्र दिया । उनके अंतर में अमलदारी का और उच्च वेतन का मोह नहीं था अपितु भारत के प्रति तीव्र राष्ट्रीय भावना थी अतः सन् १९२१ में त्यागपत्र दे दिया ।

सन् १९२१ में सौराष्ट्र के निवास समय की समाप्ति हुई । सरकारी राष्ट्रीय असहकार प्रवृत्ति के सामने सरकारी दमन नीति के विरुद्ध नौकरी से त्यागपत्र दे दिया । इसी वर्ष राजकोट, अहमदाबाद, बम्बई आदि स्थानों पर कवि दलपत शताब्दी के उत्सव मनाये गये । सन् १९२२ में बम्बई सरकार ने कवि की गिरफ्तारी के लिये वारंट निकाला, लेकिन अहमदाबाद के कलेक्टर चेटफिल्ड ने कवि की प्रतिष्ठा की बड़ी प्रशंसा करता हुआ पत्र बम्बई सरकार को भेजा जिसके फलस्वरूप वह वारंट स्थगित किया गया । इसी वर्ष कवि ने सूरत में नगीनदास होल में नर्मद की चित्रमूर्ति का उद्‌घाटन किया ।

सन् १९२३ में बडौदा में प्रेमानंद जयंती मनाई गई । सन् १९२४ में अध्यक्ष पद से वसंत पंचमी के दिन गुजरात कला-प्रदर्शन अहमदाबाद का उद्‌घाटन दिनांक १० अगस्त बम्बई राष्ट्रीय शाला में नवलराम जयंती के समय प्रमुख, दशहरा गोवरधनराम जयंती अहमदाबाद में कवि श्री की अध्यक्षता में मनाई गई ।

सन् १९२५ में अहमदाबाद में कवि की अध्यक्षता में दयाराम जयंती मनाई गई । दिनांक २४ मई पंचमहाल रेवा कांठा साहित्य सभा की स्थापना के प्रसंग पर गोधरा में सभापति पद से भाषण दिया ।

सन् १९२६ में जर्मन कवि Otto के साथ परिचय प्राप्त हुआ । प्रो० फिरोजशा कावसजी दावर साहब भी साथ में थे । मई मास में माथेरान शिखर पर " विश्वगीता " लिखी । २६ अक्टूबर में कुरुक्षेत्र " महाकाव्य " के प्रथम काण्ड का प्रारंभ हुआ । " विश्वगीता " में प्रसंगों का संकलन नहीं अपितु भावों का संकलन है । बम्बई में विभाकर जयंती के उपलक्ष में कवि को भाषण

परम्पराएं रही (१) दयाराम जयंती (२) वसंतोत्सव (३) मानव जीवन में कविता का स्थान । ये तीन विषयों पर भाषण दिये गये । भरूच में शरदोत्सव मनाया गया ।

सन् १९२७ में कवि श्री की सुवर्ण जयंती मनाई गई - बम्बई, वडोदा, अहमदाबाद, नडियाद, सुरत, कराँची, जयपुर, दिल्ही, मद्रास, डाकोर । बम्बई जयंती उत्सव तीन दिनों तक मनाया गया - (१) सर चिमनलाल सेतलवाड की अध्यक्षता में और (२) नवरत्न पंडित गिरधर शर्मा की अध्यक्षता में । नडियाद में कवि को भेंट स्वरूप ढाल और कटार दिये थे । कवि ने ढाल रख ली और कटार लौटा दी । इसी वर्ष सितंबर में कुरुक्षेत्र ४ था काण्ड अहमदाबाद में और १२वां काण्ड माथेरान में लिखा ।[१]

सन् १९२८ एक अति करुण घटना घटी । कवि की तीसरी संतान विनोदिनी बहन का निधन हुआ और कवि कई दिनों तक शोकमग्न रहे । सन् १९२९ में कवि ने " संघमित्रा " नाटक लिखकर अपनी स्वर्गीय पुत्री विनोदिनी को वह कृति अर्पण की । कराँची में साहित्य कला महोत्सव में प्रमुख बनाये गये और अध्यक्षीय भाषण दिया । इसी वर्ष अहमदाबाद में " कुरुक्षेत्र " का १०वां और १२ वां काण्ड लिखा गया ।

सन् १९३० में जामसाहब रणजीतसिंह जी ने कवि को पुनः नौकरी के लिये आमंत्रण भेजा और लिखा कि " अच्छा उच्च पद और धन दिये जायेंगे । " स्वाभिमानी कवि ने प्रत्युत्तर दिया कि -

" १९२१ मां राजिनामुं आप्या पछी सवा करोड गुजरातीओ मारा
शेठ ० सौने पूछवानो अधिकार के तारो वखत तुं केम गाळे छे?
जामनगरना पांचेक लाख सवा करोडना बहार नथी० बे चार मासनुं

---

१ कवि आनंदभाई न्हानालाल के सौजन्य से

काम होय अने बोलावशो त्यारे आवीश० मृत्युथी बीए ए क्षत्रिय नहि० गरीबीथी बीए ए ब्राह्मण नहि० "[1]

" सन् १९२१ में सरकारी नौकरी का त्यागपत्र देने के बाद सवा करोड गुर्जरी प्रजा मेरे शेठ है। सब को मुझे यह पूछने का अधिकार है कि " तू तेरा समय किस प्रकार बिताता है ? जामनगर के करीब पांच लाख सवा करोड के बाहर नहीं है। यदि दो चार महिने का काम हो तो आप बुलायेंगे तब आऊंगा। मृत्यु से डरे वह क्षत्रीय नहीं और दरिद्रता से डरे वह ब्राह्मण नहीं "

सन् १९२१ में सिद्धपुर में श्री रमणलाल वसंतलाल देसाई के घर अपनी पुत्री विनोदिनी बहन का शोक भुलाने के लिये गये। वहीं पर कृष्ण जीवन पर जाहिर प्रवचन किया।

सन् १९२२ में " सारथी " उपन्यास लिखा गया। पत्नी माणेक बा का शरीर अस्वस्थ होने के कारण उपचार के लिये माथेरान गये। मई में बम्बई एक सप्ताह रुके। वहां श्री चंद्रवदन महेता ने कांग्रेस की पत्रिका छपवाई थी वह अवलोकनार्थ कवि श्री को दी।

इसी वर्ष कवि ने महत्त्वपूर्ण मानव सेवा का काम किया। बोरसद के पास आंकलाव गांव में जप्त किये गये और नीलाम पुकारे गये किसानों के खेत दरबार गोपालदास (जो मूल वसो के थे) के पास से किसानों को वापस दिलवाये।

सन् १९२२ जाठी (सौराष्ट्र) साहित्य परिषद में कवि श्री के बारे में चर्चा हुई। " जया-जयन्त " नाटक का लिखी गई डोलन शैली में ही अभिनय किया गया। इसमें से पुराना गोपिका नाटक संशोधन की प्रेरणा प्राप्त हुई।

---

१ इतिहासमां ब्राह्मणत्वनुं स्थान, भाषण, पृ० ७

सन् १९२४ में केशव हर्षद ध्रुव के विदा समारंभ में प्रमुख बनाये गये - गुजरात कालेज, अहमदाबाद। डभोई में दयाराम जयंती मनाई गई। उस मुहल्ले का नाम दयारामपुरी रखा। पहले उसका नाम कंगाल पुरी था। कविवर टागोर ने भी इसी वर्ष में " डोलन शैली " का काव्य पथ अपनाया। आणंद में सर्व धर्म सम्मेलन में प्रमुख बनाये गये।[1]

सन् १९२५ में मोरबी हाईस्कूल से आमंत्रण मिला और मई महीने में शंकर आश्रम मोरबी में उत्सव मनाया गया। इसी वर्ष दिसम्बर महीने में कवि को हृदय रोग ने आ घेरा। कवि अहमदाबाद में लालशंकर के बंगले में रहते थे। हृदय रोग की स्थिति में कवि को बालकृष्ण के दर्शन हुए। इसी भावना से प्रेरित होकर कवि ने " वेणुविहार " काव्य लिखा।[2]

सन् १९२६ में चांदोद के पास मांडवा गांव में वायु परिवर्तन और स्वास्थ्य-लाभ के लिये गये थे। वे पालीताणा भी इसी उद्देश्य से गये थे।

सन् १९२७ में निम्नलिखित स्थलों पर कवि श्री का मणिमहोत्सव मनाया गया :-

नवसारी, अहमदाबाद, बम्बई, सरसेन, गोधरा, सुरत, वडोदा आदि। इस उत्सव के शुभ प्रसंग पर डोलन शैली का महत्त्व स्वीकृत किया गया। इसी वर्ष कवि श्री ने वडोदा में आर्य कन्या महाविद्यालय में दीक्षांत समारंभ में अध्यक्षीय भाषण दिया।

सन् १९२८ में बम्बई के पास जुहू वायु परिवर्तन और स्वास्थ्य प्राप्ति के लिये गये। जुहू के किनारे " म्हेरामणनां मोती " काव्य लिखा। वडोदा के संबंध में महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय का भावी संकेत भी इसी वर्ष में किया

---

१ श्री आनंदजी न्हानालाल के सौजन्य से

२ वही

गया ।

सन् १९३९ में अस्वस्थ शरीर के कारण पुनः सौराष्ट्र गये । वहां से लौट कर जुहू गये और वहीं प्राकृतिक सौन्दर्य की गोद में कुरुक्षेत्र का तीसरा, सातवां और आठवां काण्ड लिखा ।

सन् १९४० में कर्णावती काव्य समाप्त हुआ और प्रकाशित किया गया । कुरुक्षेत्र का छ ठा काण्ड बम्बई में और नवमा काण्ड अहमदाबाद में लिखा गया ।

सन् १९४२ में दाहिनी आंख में मोतिया बिंद होने कारण बांई आंखों से अहमदाबाद में मोतिया बिंद निकाले गये थे । लिखने-पढ़ने का उस समय पूर्ण रूप से निषेध था । इस अवस्था में भी साहित्य सेवा गतिशील ही रखी और मुंह से बोलते थे और उनके मित्र लिखते थे । २८ काव्यों के संकलन की पुस्तक प्रकाशित हुई । कवि की इस अवस्था के कारण उसका नाम " प्रज्ञाचक्षुना प्रज्ञा-बिंदु " रखा गया । इसी वर्ष में " दलपतवंशनी १११ वर्षनी साहित्योपासना " का समारोह अहमदाबाद में मनाया गया । वहां कवि अध्यक्ष पद पर रहे ।

सन् १९४३ की शरदऋतु में धारापुरी एलीफन्टा की गुफाएं - बम्बई - कवि के साथ १२०० लोग पर्यटन का रसास्वादन करने के लिये गये ।[1] इस वर्ष कवि ने डाकोर के रणछोडराय मंदिर में " हरिसंहिता " महाकाव्य के प्रथम मंडल की एक कथाकार की हैसियत से कथा की । कहना न होगा कि आप कवि ही नहीं सफल कथाकार भी थे । तदनन्तर सन् १९४४ में पुनः डाकोर में रणछोडरायजी के मंदिर में "हरिसंहिता" के द्वादश मंडल की कथा की और सफल कथाकार की कीर्ति प्राप्त की ।

सन् १९४५ में अहमदाबाद की गुजरात कालेज में कवि श्री का तैलचित्र

---

१ स्वप्ना साचां पड्यां १९४५ के भाषणमें से

रखा गया। यह तैलचित्र स्व० वांसदा महाराजा साहब इन्द्रसिंह जी ने कालेज को भेंट दिया और पोरबंदर के महाराजा श्री नटवरसिंह जी ने उस तैलचित्र का अनावरण किया। इसी वर्ष दिसम्बर में समस्त चौरासी ब्राह्मण जाति की ओर से अहमदाबाद में मानपत्र दिया गया।

सन् १९४९ में प्रस्थान यात्रा का समय निकट पहुंचा। दिनांक जनवरी ५ बुधवार पोष शुक्ला ७ को, रात्रि के ११-२५ मिनट पर कवि का निधन हुआ।

इस प्रकार इस महाकवि की जीवनयात्रा समाप्त हुई। कवि का गृहस्थ जीवन अत्यंत सुखपूर्ण था। उनकी पत्नी माणेक बा पूर्ण रूप से भारतीय महिला के आदर्श गुणों से विभूषित थी और कवि को – वर्षों तक गार्हस्थ्य सुख देती रही जिसके फलस्वरूप कवि का वंश वृक्ष निम्न प्रकार है :-

कवि न्हानालाल

मनोहर	अनुपम	विनोदिनी	आनंद	चन्द्रकान्त	जयंत	नटवरलाल	उषा
(पुत्र)	(पुत्र)	(पुत्री)	(पुत्र)	(पुत्र)	(पुत्र)	(पुत्र)	(पुत्री)
१	२	३	४	५	६	७	८

कवि श्री न्हानालाल जी का मित्रमंडल इस प्रकार था :-

(१) श्री काशीराम सेवकराम दवे पूज्य गुरुदेव

(२) श्री कनैयालाल मुनशी

(३) श्री चंद्रशंकर पंड्या

(४) श्री चिमनलाल सेतलवाड

(५) प्रो० त्रिभुवनदास गज्जर

(६) चुनीलाल घ० सरैया

(७) अमृतलाल पढियार

(८) कवि श्री कान्त

(९) कवि श्री ललित

इसके सिवा अनेक देशनेता, लोकनेता, समाजनेता महात्मा गांधीजी, सर प्रभाशंकर पट्टणी, प्रोफेसर राममूर्ति, भिक्षु अखंडानंदजी, स्वामीनारायण गढडा के मोहनदासजी आदि अनेक संत महात्मा भी उनके यहां जमा होते थे।

तुलनात्मक व विश्लेषण :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में जयशंकर प्रसाद तथा कवि न्हानालाल की जीवनी और व्यक्तित्व का जो विवेचन प्रस्तुत किया है, उससे प्रकट है कि, दोनों ही कवि परस्पर समकालीन होने के साथ अपनी-अपनी भाषाओं के साहित्य में एक नयी काव्य शैली के पुरस्कर्ता तथा प्रकारान्तर से युगनिर्माता के रूप में साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत प्रतिष्ठित हैं। भावप्रवणता, संवेदनशीलता, तथा अभिव्यंजना, शिल्प आदि की दृष्टि से इनकी काव्य-शैलियाँ समानधर्मी ही है जिनका विस्तृत अनुशीलन परवर्ती अध्यायों का विषय है। यहां कवि द्वय की साहित्य-साधना के साथ साथ विकासशील उनके व्यक्तित्व विषयक तथ्यों का संक्षिप्त विहंगावलोकन उपयुक्त होगा जो कि उनके कृतित्व के मूल्यांकन के लिए सहायक भी होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि दोनों ही कवि भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठावान, राष्ट्र प्रेमी तथा देश के सुधारवादी युग की देन थे। आगत परिस्थितियों के प्रति संघर्ष का ढंग भले ही दोनों का अपना निजी रहा हो किन्तु एक प्रबल जीवट के साथ दोनोंने अपनी व्यक्तित्व आवृत रखा। प्रकृति-प्रेम की चेतना भी दोनों में समान रूप से दिखायी देती है। यद्यपि प्राचीन भारतीय के प्रति अनुराग भारत के गौरवमय अतीत का गम्भीर अध्ययन और निजी प्रतिभा द्वारा उसका मौलिक विश्लेषण तथा समकालीन पाश्चात्य साहित्य की चेतना से यथोचित सम्पर्क दोनों के साहित्यिक व्यक्तित्व में न्यूनाधिक मात्रा में मिलता है।

तथापि पारिवारिक परम्परा, धार्मिक आस्था, रुचि-प्रकृति संस्कार तथा जीवन की सम-विषम परिस्थितियों के उनके अनुभव नितान्त भिन्न थे। अतः उनके इस पक्ष की किंचित् विस्तार के साथ चर्चा यहां आवश्यक है।

जीवनी से सम्बन्धित विवेचन से प्रकट है कि प्रसाद जी का धार्मिक आस्था और मान्यता शैव साधना से सम्बद्ध थीं और उनका निजी झुकाव शैव दर्शन की ओर था। इस विशेषता के कारण वे जीवन के तथ्यों की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त रहे। शैव-साधना और उसके प्रत्यभिज्ञा दर्शन की काव्यात्मक परिणति " कामायनी " महाकाव्य में हुई है जिस पर प्रसंगानुसार आगे विचार किया जायगा। दूसरी ओर कवि न्हानालाल धार्मिक संस्कारों की दृष्टि से वैष्णव थे। वैष्णवी आस्था के कारण संभवतः उनके पिता श्री कवीश्वर दलपतराय ने अनेक पौराणिक आख्यानों को अपने काव्य का विषय बनाया और यह हम लक्ष्य कर चुके हैं कि कवि न्हानालाल ने अपनी आरम्भिक कृतियों में अपने पिता का अनुसरण किया। अतः यह निःसंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि पारिवारिक परंपरा से न्हानालाल को कवि व्यक्तित्व के निर्माण का सुन्दर सुयोग मिला। साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि यह विरासत किसी न किसी रूप में उनकी काव्याभिव्यक्ति को सम्भवतः नियंत्रित भी करती रही। दूसरी ओर जयशंकर प्रसाद को न पारिवारिक परम्परा से और न पारिवारिक वातावरण से कवि व्यक्ति की निर्मात्री जीवनधारा न प्राप्त हो सकी। जीवन की विविध परिस्थितियों में आगे बढ़ते हुए और अनुकूलता प्रतिकूलता के प्रति निरपेक्ष भाव से वे साहित्य साधना में रत रहे। यही कारण है उनकी काव्य-दिशा का निर्माण या नियंत्रण कवि न्हानालाल से भिन्न रहा। उन्मुक्त प्रेम और संवेदना के सफल और आत्ममुखी गायक के रूप में अपने पथ का संधान उन्होंने प्रारम्भ से स्वयं ही किया।

पारिवारिक और आर्थिक परिस्थितियों के दृष्टिकोण से दोनों की भिन्नता पूर्ववर्ती पृष्ठों के अनुशीलन के तुलनात्मक आकलन से स्पष्ट है । जयशंकरप्रसाद के जीवन में दुःखद तथा संकटपूर्ण परिस्थितियाँ आरम्भ से लेकर जीवन के बहुत बड़े भाग तक आती रही हैं । १२ वर्ष से लेकर १७ वर्ष की अवस्था के पाँच वर्षों के बीच क्रमशः पिता, माता, तथा ज्येष्ठ भाई का स्वर्गवास और साथ ही विरासत में मिला ऋण भार, व्यवसाय की गिरावट तथा अन्य कौटुम्बिक जनों के साथ मुकदमेबाजी आदि की एक विकट दूसरी ओर शोकभरी परिस्थितियाँ किशोर प्रसाद पर टूट पड़ीं । उनकी गम्भीर प्रकृति साहस के साथ उन्हें झेल सकी किन्तु वेदना, कष्ट, मानसिक यंत्रणा, अर्थ चिन्ता आदि से ग्रस्त होना स्वाभाविक था । दूसरी ओर उनके साहित्य की ओर देखें तो वह इन परिस्थितियों द्वारा संभाव्य कुंठाओं से नितान्त मुक्तकहा जा सकता है । यह कहना सत्य से परे न होगा कि विपत्तियों और संघर्षों के बीच उनका शान्त और अकम्पित व्यक्तित्व उभर कर आया तो दूसरी ओर गंभीर प्रकृति ने उन्हें अत्याधिक संवेदनशील बना दिया । यह संवेदनशीलता उनके काव्य का प्राण है जिससे कवि निरन्तर जीवन रस खींचता रहा और उसके अमर काव्य काकली का स्वर विस्तृत होता रहा ।

किन्तु जब हम कवि न्हानालाल के परिस्थितिगत जीवनानुभवों की समष्टि पर दृष्टिक्षेप करते हैं तो उससे नितान्त भिन्न स्थिति का बोध होता है । वे आर्थिक संघर्ष तथा पारिवारिक उत्तरदायित्व की चिन्ता से दीर्घकाल तक मुक्त रहे और प्रायः आदि से अंत एतद्विषयक संघर्ष या समस्या उनके जीवन में नहीं आ पायीं । अतः निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आर्थिक व्यवसाय कवि न्हानालाल की रुचि तथा साहित्य-साधना के सर्वथा अनुरूप था और प्रगतिशीलता के कारण उन्हें सभी क्षेत्रों में सम्मान प्राप्त होता रहा । किन्तु प्रसादजी इस दृष्टि से दुहरा जीवन-यापन करते हुए दिखाई देते हैं । एक ओर तम्बाकू का व्यापार तो दूसरी ओर साहित्य-साधना और समय मिलने पर साहित्य-गोष्ठियां उनके जीवन की अंग बनीं । अतः साहित्य साधना सायास रही होगी । दूसरी ओर पिता

से प्राप्त सुविधा से न्हानालाल अहमदाबाद और बम्बई आदि स्थानों में रह कर उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके। द्वितीयतः वे समाज सेवा में सदैव सक्रिय रहने के साथ साथ सम सामयिक साहित्यिक गति-विधियों का संचालन करते रहे। प्रसाद जी प्रकृत्या इससे किंचित् दूर दिखायी पड़ते हैं। उनका सामाजिक संपर्क केवल साहित्यकारों तक ही सीमित रहा। वे समाज-सुधारक दृष्टिकोण रखते थे किन्तु भीड़-भाड़ से दूर एकांतसेवी अधिक थे। कवि न्हानालाल की प्रकृति इससे नितान्त भिन्न कही जा सकती है। बचपन की चंचलता उनकी सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों में भी दृष्टिगोचर होती है।

अन्य भिन्नता जो जयशंकर प्रसाद में अत्यंत स्पष्ट दिखायी देती है वह है ललित कलाओं के प्रति गहरी रुचि की। इस रुचि के साथ उनका व्यापक और गम्भीर अध्ययन, दार्शनिकता तथा शान्त और गम्भीर प्रकृति ने उनकी कृतियों में इन सब का अपूर्व समन्वय ला दिया है। यह समन्वय कवि न्हानालाल में अपेक्षाकृत कम है। प्रसाद जी की संवेदनशीलता के विषय में हम लक्ष्य कर चुके हैं किन्तु न्हानालाल के व्यक्तित्व में भी यह संवेदनशीलता पर्याप्त मात्रा में वर्तमान थी। लल्लुभाई मेहता की सुपुत्री सुमति बहन के अल्पावस्था में निधन पर उनके उद्‌गार हमें प्रभावित कर देते हैं इसमें संदेह नहीं कि कवि न्हानालाल को प्रसादजी की अपेक्षा कृत बाह्य वर्ष का अधिक समय मिला। किन्तु प्रसादजी की प्रतिभा व्यापार के अतिरिक्त साहित्य-साधना में पूर्णतया कार्यशील रही। अतः कालगत विस्तार में अंतर होते हुए दोनों का कृतित्व लगभग समान परिमाण का है। यह कहना अनुमान ही कहा जायगा कि यदि प्रसाद को बाह्य वर्षों का अधिक जीवन मिला होता तो कदाचित् "कामायनी" जैसी कुछ अन्य अमर काव्य कृतियाँ और अपनी निजी शैली से समृद्ध कहानियाँ तथा उपन्यास हिन्दी जगत् को दे जाते। यह अनुमान निराधार तो नहीं कहा जा सकता किन्तु उसके आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुंचना हमारी अनुशीलन गत सीमाओं से परे है।

प्रस्तुत अध्याय के अनुशीलन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि समसामयिक युग के ये दोनों महाकवि जीवन की परस्पर भिन्न परिस्थितियों निजी रुचियों और आस्थाओं से वैशिष्ट्य को लिए हुए अपनी अपनी भाषाओं के साहित्य के प्रकाश स्तंभ के रूप में प्रतिष्ठित है। यह हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में संक्षेप में निर्दिष्ट कर चुके हैं। आस्था, जीवनगत परिस्थितियां, चिन्ता और स्वभाव आदि का कृतित्व में कितना योगदान है किन्तु इसका यथेष्ट अनुशीलन उनकी कृतियों से स्वतंत्र विवेचन द्वारा किया जा सकता है और यह परवर्ती अध्याय में प्रस्तुत किया जा रहा है।

oooooo